

○ वीतराग-विज्ञान (सितम्बर-मासिक) * 26 अगस्त 2011 • वर्ष 30 • अंक 2

सम्पादकीय

नियमसार : एक अनुशीलन

(गतांक से आगे)

पूज्य गुरुदेवश्री कानजी स्वामी इस गाथा का भाव इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“आत्मा का बल बाहर से नहीं लाना पड़ता, वह तो स्वयं ही स्वाभाविक बल का पिण्ड है।^१

हे भाई ! ऐसे अनन्त स्वाभाविक बलवाला तू है, इसलिये आलस्य त्याग। अब अवसर आ गया है, अतः स्वभाव के भान सहित रमणतास्वरूप अपनी उत्कृष्ट समतारूपी कुलदेवी को याद करके शान्त - उपशम भाव का रटन करके, अज्ञान मंत्री सहित मोहराजा को नाश करनेवाले इस सम्यग्ज्ञानरूपी चक्र को ग्रहण कर, अर्थात् स्वभाव में एकाग्र होकर अज्ञानमंत्री और मोहराजा का नाश कर।

लोग बाहर में कुलदेवी को मानते हैं, वह सच्ची कुलदेवी नहीं है। ऐसे भ्रम को पोषण करके जीव संसार में भटक-भटक कर मरता है। सच्ची कुलदेवी तो चैतन्य आत्मा की समता है, अन्य कोई कुलदेवी नहीं है। चैतन्य त्रिकाली स्वभाव ही आत्मा का सच्चा कुल है और उसकी समता कुलदेवी है।

हे नाथ! मैं चैतन्यस्वभावी आत्मा हूँ, पुण्य-पाप की कृत्रिम उपाधिरहित मेरा स्वरूप है - ऐसे आत्मा का भान करके उसमें ठहरना, वह हमारे कुल की रीति है - अनन्त तीर्थकरों के कुल की रीति है।^२”

इस छन्द में रूपक अलंकार के माध्यम से यह कहा गया है कि हे आत्मन् ! तुझमें मोह का नाश करने के लिए स्वाभाविक बल है। इसलिए तू प्रमाद छोड़कर उस बल से मोह राजा को जीतने के लिए सम्यग्ज्ञानरूपी चक्ररत्न को प्राप्त कर और उसका प्रयोग कर, इससे ही मोह राजा अपने अज्ञानमंत्री के साथ नाश को प्राप्त होगा ॥५७॥

इसके बाद टीकाकार मुनिराज स्वयं दो छन्द लिखते हैं; जिनमें पहला छन्द इसप्रकार है -

(वसंततिलका)

मुक्त्यंगनालिमपुनर्भवसौख्यमूलं

दुर्भावनातिमिरसंहतिचन्द्रकीर्तिम् ।

संभावयामि समतामहमुच्चकैस्तां

या संमता भवति संयमिनामजस्रम् ॥१४०॥

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ ८४४

२. वही, पृष्ठ ८४४-८४५

(हरिगीत)

मुक्त्यांगना का भ्रमर अर जो मोक्षसुख का मूल है।
 दुर्भावनातमविनाशक दिनकरप्रभा समतूल है॥
 संयमीजन सदा संमत रहें समताभाव से।
 मैं भाऊँ समताभाव को अत्यन्त भक्तिभाव से॥१४०॥

जो समताभाव; मुक्तिरूपी स्त्री के प्रति भ्रमर के समान है, मोक्ष के सुख का मूल है, दुर्भावनारूपी अंधकार के नाश के लिए चन्द्रमा के प्रकाश के समान है और संयमियों को निरंतर संमत है; टीकाकार पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं कि मैं उस समताभाव को अत्यंत भक्तिभाव से भाता हूँ।

इस छंद का भाव आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी इसप्रकार स्पष्ट करते हैं-

“चिदानन्दस्वरूप आत्मा की प्रतीतिपूर्वक रमणता करके पूर्ण निर्मल शुद्धदशा प्रगट करना मुक्ति है। हे भव्य! यदि तुझे वह मुक्त दशा प्रगट करनी हो तो स्वभाव में रमणतारूप अन्तर समता प्रगट कर; वह समता मुक्तिरूपी स्त्री अर्थात् आत्मा की परिपूर्ण शुद्धदशा के प्रति भ्रमर समान है। जैसे पद्मिनी स्त्री के पीछे भ्रमर फिरते हैं, वैसे ही मुक्ति अंगना (मुक्तिदशा) प्राप्त करने के लिये समता, भ्रमर के समान उसके पीछे-पीछे फिरती है अर्थात् समता भ्रमर समान मुक्ति के प्रति रत है।

राज्य के लिये, देश के लिए, लोक के लिये सहन करना समता नहीं है। मैं शुद्ध सच्चिदानन्द ज्ञानमूर्ति हूँ - ऐसा भान करके स्वरूप में - परम उपशमरस में ठहरने पर पुण्य-पाप की वृत्ति का उत्थान ही न होना सच्ची समता है, वही मोक्षसुख का मूल है।

स्वभाव में लीनतारूप यह समता पुण्य-पापरूपी - दुर्भावनारूपी अंधकार को नाश करने के लिये चन्द्र के प्रकाश समान है। यह मेरा हितकारक और यह मेरा बुरा करनेवाला है - ऐसी कल्पना दुर्भावना है। वास्तव में तो भला-बुरा करनेवाला दूसरा कोई है ही नहीं। विपरीत मान्यता तेरा बुरा करनेवाली है और सम्यक् मान्यता तेरा भला करने वाली है।”

इस छन्द में संतों को सदा संमत समताभाव का स्वरूप स्पष्ट किया गया है, उसकी महिमा से परिचित कराया गया है, उसे मोक्षसुख का मूल कारण कहा गया है। उसकी उपमा सुन्दर स्त्रियों के ऊपर मंडरानेवाले भौरों से और अन्धकार को नष्ट करनेवाले चन्द्रप्रकाश से दी गई है; क्योंकि इस समता से मुक्तिरूपी स्त्री से समागम होता है और दुर्भावनारूपी अंधकार नष्ट हो जाता है।

वस्तुतः ऐसा समताभाव ही निश्चयप्रत्याख्यान है। अतः टीकाकार मुनिराज कहते हैं कि मैं इसप्रकार के समताभाव को धारण करता हूँ, उसकी भावना करता हूँ॥१४०॥

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ ८४६

दूसरा छन्द इसप्रकार है -

(हरिणी)

जयति समता नित्यं या योगिनामपि दुर्लभा
निजमुखसुखवार्धिप्रस्फारपूर्णशशिप्रभा ।
परमयमिनां प्रव्रज्यास्त्रीमनःप्रियमैत्रिका
मुनिवरगणस्योच्चैः सालंक्रिया जगतामपि ॥१४१॥

(हरिगीत)

जो योगियों को महादुर्लभ भाव अपरंपार है ।
त्रैलोक्यजन अर मुनिवरों का अनोखालंकार है ॥
सुखोदधि के ज्वार को जो पूर्णिमा का चन्द्र है ।
दीक्षागना की सखी यह समता सदा जयवंत है ॥१४१॥

जो योगियों को भी दुर्लभ है, आत्माभिमुख सुख के सागर में ज्वार लाने के पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान है, परम संयमी पुरुषों की दीक्षारूपी स्त्री के मन को लुभाने के लिए सखी के समान है और मुनिवरों तथा तीनलोक का अतिशयकारी आभूषण है; वह समताभाव सदा जयवंत है ।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजी स्वामी इस छन्द के भाव को इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“राग-द्वेष, पुण्य-पाप की विषमतारहित स्वभाव में रमणतारूप समता मुनि को भी दुर्लभ है तो फिर अज्ञानी को सच्ची समता कैसे हो सकती है ?

जिसप्रकार समुद्र के ज्वार में चन्द्रमा निमित्त है, उसीप्रकार आत्मा के जो चैतन्य ज्ञानानन्दशक्ति अन्तरस्वभाव में भरी पड़ी है, उसे व्यक्त पर्याय में प्रगट करने के लिये समताभावरूपी चन्द्रमा के समान है।^१

मुनियों ने अपने आत्मा का भान करके दीक्षा प्रगट की है, उस दीक्षारूपी वीतरागी-परिणति को अभ्यन्तर समता अति प्रिय है ।

वह अभ्यन्तर समता मुनिवरों के समूह को ही नहीं, अपितु तीन लोक को भी अतिशयपने आभूषणस्वरूप है । वह समता सदा जयवन्त हो ।^२

मुनिवर कहते हैं कि वह समता जयवन्त वर्तती है अर्थात् ऐसी समतावाले निर्ग्रन्थ मुनिवरों का विरह कभी पड़ता नहीं - इसलिये वह जयवन्त वर्तती है।^३”

इस छन्द में भी समताभाव के ही गीत गाये हैं । योगियों को दुर्लभ यह समताभाव अतीन्द्रिय आनन्द के सागर में ज्वार लाने के लिए पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान है ।

यह तो आप जानते ही हैं कि पूर्णमासी के दिन सागर में ज्वार आता है और अमावस्या के दिन भाटा होता है ।

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ ८५०

२. वही, पृष्ठ ८५१

३. वही, पृष्ठ ८५१

तात्पर्य यह है कि जिसप्रकार पूर्णमासी के चन्द्रमा को देखकर समुद्र उमड़ता है, उसमें पानी की बाढ़ आती है और अमावस्या के दिन चन्द्रमा के वियोग में सागर शान्त हो जाता है, उदास हो जाता है, पानी किनारे से दूर चला जाता है; उसीप्रकार आत्मारूपी सागर में समतारूपी पूर्णचन्द्र के उदय होने पर अतीन्द्रिय आनन्दरूपी जल की बाढ़ आ जाती है।

यह समता दीक्षारूपी पत्नी की सरवी है तथा सन्तों और सभी लोगों का आभूषण है। अतः आत्मार्थी भाई-बहिनों को समता की शरण में जाना चाहिए; क्योंकि यह समता ही निश्चयप्रत्याख्यान है ॥१४१॥

नियमसार गाथा १०५

अब इस गाथा में यह बताते हैं कि निश्चयप्रत्याख्यान करनेवाले सन्त कैसे होते हैं। गाथा मूलतः इसप्रकार है -

णिक्कसायस्स दान्तस्स सूरस्स ववसायिणो ।
संसारभयभीदस्स पच्चक्खाणं सुहं हवे ॥१०५॥
(हरिगीत)

जो निष्कषायी दान्त है भयभीत है संसार से।
व्यवसाययुत उस शूर को सुखमयी प्रत्याख्यान है ॥१०५॥

जो निष्कषाय है, दान्त (इन्द्रियों को जीतनेवाला) है, शूरी है, व्यवसायी है और संसार से भयभीत है; उसे सुखमय प्रत्याख्यान होता है।

इस गाथा के भाव को टीकाकार मुनिराज इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“जो जीव निश्चयप्रत्याख्यान के योग्य हों; उन जीवों के स्वरूप का यह कथन है। जो समस्त कषायरूपी कलंक के कीचड़ से मुक्त हैं; सभी इन्द्रियों के व्यापार पर विजय प्राप्त कर लेने से, जिन्होंने परमदान्तता (जितेंद्रियपना) प्राप्त की है; सभी परीषहरूपी महासुभटों को जीत लेने से, जिन्होंने अपनी शूरीरता प्राप्त की है; निश्चय परम तपश्चरण में निरत - ऐसा शुद्धभाव जिन्हें वर्तता है और जो संसारदुःख से भयभीत है; ऐसे सन्तों को यथोचित शुद्धता सहित व्यवहार से चार प्रकार के आहार के त्यागरूप व्यवहारप्रत्याख्यान है।

दूसरी बात यह है कि शुद्धतारहित व्यवहारप्रत्याख्यान तो मिथ्यादृष्टि पुरुषों को भी चारित्रमोह के उदय के हेतुभूत द्रव्यकर्म और भावकर्म के क्षयोपशम द्वारा क्वचित् कदाचित् संभवित है। इसीलिए निश्चय-प्रत्याख्यान ही आसन्नभव्यजीवों के लिए हितरूप है।

जिसप्रकार सुवर्णपाषाण उपादेय है, अन्धपाषाण नहीं; उसीप्रकार निश्चय-प्रत्याख्यान ही उपादेय है, व्यवहारप्रत्याख्यान नहीं।

इसलिए यथोचित शुद्धता सहित संसार तथा शरीर संबंधी भोगों की निर्वेगता निश्चयव्याख्यान का कारण है और भविष्यकाल में होनेवाले समस्त मोह-राग-द्वेषादि विविध विभावों का परिहार परमार्थप्रत्याख्यान है अथवा अनागतकाल में उत्पन्न होनेवाले विविध विकल्पों का परित्याग शुद्धनिश्चयप्रत्याख्यान है।”

यहाँ प्रश्न संभव है कि यहाँ जो यह कहा गया है कि ‘मिथ्यादृष्टि के भी चारित्रमोह के उदय के हेतुभूत द्रव्यकर्म और भावकर्म के क्षयोपशम द्वारा’ - इसमें प्रश्न यह है कि मिथ्यादृष्टि को चारित्रमोह का क्षयोपशम कैसे हो सकता है ?

उक्त संदर्भ में पूज्य गुरुदेवश्री कानजी स्वामी का कथन इसप्रकार है -

“शुद्धतारहित व्यवहारप्रत्याख्यान तो कुदृष्टि-मिथ्यात्वी पुरुषों को भी चारित्रमोह के उदय के हेतुभूत द्रव्यकर्म-भावकर्म के क्षयोपशम द्वारा क्वचित् कदाचित् संभवित है। अज्ञानी के भी पुण्य के भावरूप प्रत्याख्यान का परिणाम होता है; परन्तु वह सच्चा प्रत्याख्यान नहीं है। मिथ्यादृष्टि को कषाय की किंचित् मंदता होने पर पुण्यभाव होता है। अतः उसे स्वर्ग मिलता है, पुण्य फलता है; तथापि उससे आत्मा का कल्याण तो रंचमात्र भी नहीं होता।^१

अज्ञानी को होनेवाली मन्दकषाय तो वास्तव में चारित्रमोह का उदय है, क्षयोपशम नहीं। निश्चय से तो वह उदय है; किन्तु व्यवहार से कुछ कषाय मंद होने से क्षयोपशम कहने में आता है।^२

जैसा स्वर्णपाषाण उपादेय है, वैसा अंधपाषाण उपादेय नहीं है। ज्ञायकमूर्ति आत्मा के आश्रय से प्रगट हुआ वीतरागी प्रत्याख्यान ही उपादेय है, रागादिभाव उपादेय नहीं हैं।

जिसप्रकार जिस पत्थर में से सोना निकलता है, उसे जगत स्वीकार करता है और जिस पत्थर में से सोना नहीं निकलता है, उसे जगत स्वीकार नहीं करता; उसीप्रकार संसार-शरीर के प्रति भोग का भाव तो पत्थर जैसा है, उनसे विरक्त होकर चैतन्य का आश्रय लेना; वह प्रत्याख्यान है। ऐसा प्रत्याख्यान भव्यजीवों को उपादेय है।^३

अज्ञानी को जो आहार आदि के त्याग का शुभभाव होता है, वह वास्तविक प्रत्याख्यान नहीं है; क्योंकि शुद्धतारहित अकेला शुभभाव तो अंधपाषाण समान है। जिसे संसार-शरीर के प्रति प्रेम है, उसे तो मिथ्यात्व की भी पहिचान नहीं है।^४”

स्वामीजी के उक्त कथन से यह बात स्पष्ट ही है कि मिथ्यात्व के क्षयोपशम, उपशम या क्षय बिना चारित्रमोह के क्षयोपशम की बात औपचारिक व्यवहार कथन ही है, परमार्थ से तो ऐसा संभव ही नहीं है।

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ ८५५

३. वही, पृष्ठ ८५९

२. वही, पृष्ठ ८५५

४. वही, पृष्ठ ८६०

निश्चयप्रत्याख्यान और निश्चयपूर्वक होनेवाला व्यवहारप्रत्याख्यान तो मिथ्यात्व और तीन कषाय चौकड़ी के अभाव में मुनिराजों के ही होता है। चतुर्थ और पंचम गुणस्थान के श्रावकों को भी भूमिकानुसार यथासंभव प्रत्याख्यान हो सकता है, पर मिथ्यादृष्टियों का प्रत्याख्यान तो कथनमात्र है ॥१०५॥

इसके बाद टीकाकार मुनिराज एक छंद लिखते हैं; जो इसप्रकार है-

(हरिणी)

जयति सततं प्रत्याख्यां जिनेन्द्रमतोद्धवं
परमयमिनामेतन्निर्वाणसौख्यकरं परम् ।
सहजसमतादेवीसत्कर्णभूषणमुच्चकैः
मुनिप शृणु ते दीक्षाकान्तातियौवनकारणम् ॥१४२॥

(हरिगीत)

अरे समतासुन्दरी के कर्ण का भूषण कहा।
और दीक्षा सुन्दरी की जवानी का हेतु जो॥
अरे प्रत्याख्यान वह जिनदेव ने जैसा कहा।
निर्वाण सुख दातार वह तो सदा ही जयवंत है ॥१४२॥

हे मुनिवर ! ध्यान से सुनो। जिनेन्द्रदेव के मन में उत्पन्न होनेवाला यह प्रत्याख्यान निरन्तर जयवंत है। यह प्रत्याख्यान; उत्कृष्ट संयम को धारण करनेवाले वीतरागी मुनिराजों को मुक्तिसुख को प्राप्त करानेवाला है, सहज समतादेवी के सुन्दर कानों का उत्कृष्ट आभूषण है और तेरी दीक्षारूपी प्रिय स्त्री के अतिशय यौवन का कारण है।

इस छन्द के भाव को पूज्य गुरुदेवश्री कानजी स्वामी इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“सर्वज्ञदेव के द्वारा कहे हुए शुद्ध चैतन्य तत्त्व का भान करके, जो उसमें स्थिर होते हैं; उन मुनिवरों को निश्चयप्रत्याख्यान होता है। उन परमसंयमी मुनिवरों को वह प्रत्याख्यान मोक्ष का कारण है। वही प्रत्याख्यान समतादेवी के कर्ण का सुन्दर आभूषण है। लौकिक अनुकूलता एवं प्रतिकूलता सभी के प्रति मुनिराजों को समता है। मुनियों की सहज समता का आभूषण यह निश्चयप्रत्याख्यान है।

हे मुनि ! जो तेरे स्वरूप के आनन्द में झूलती हुई दीक्षारूपी प्रिय स्त्री, उसके अतिशय यौवन का कारण यह प्रत्याख्यान है अर्थात् स्वरूप में लीनतारूप वीतराग चारित्र से तेरी दीक्षा की शोभा है।

मुनि को प्रिय में भी प्रिय तो दीक्षा-वीतरागीचारित्र है। उस दीक्षा में वृद्धि लाने के लिये कारणरूप यह निश्चयप्रत्याख्यान है। शांतभाव होकर स्वरूप में ठहर जाय - ऐसी मुनिराजों की दशा होती है और उन्हें ही ऐसा प्रत्याख्यान होता है।^१”

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ ८६२

इस छन्द में निश्चयप्रत्याख्यान के महत्त्व को दर्शाया गया है, उसके गीत गाये हैं। कहा गया है कि वह निरंतर जयवंत वर्तता है।

यह निश्चयप्रत्याख्यान वीतरागी सन्तों को अतीन्द्रिय आनन्द प्राप्त करानेवाला है, समतादेवी के कानों का उत्कृष्ट आभूषण है और तेरी दीक्षारूपी पत्नी को सदा युवा रखने का कारण है। इसलिए हे मुनिजनो! तुम इस निश्चयप्रत्याख्यान को अत्यन्त भक्तिभाव से धारण करो ॥१४२॥

नियमसार गाथा १०६

नियमसार शास्त्र के इस निश्चयप्रत्याख्यानाधिकार की यह अंतिम गाथा है, इसमें अधिकार का उपसंहार किया गया है। गाथा मूलतः इसप्रकार है -

एवं भेदब्भासं जो कुव्वइ जीवकम्मणो णिच्चं ।

पच्चक्खाणं सक्कदि धरिदुं सो संजदो णियमा ॥१०६॥

(हरिगीत)

जो जीव एवं कर्म के नित करे भेदाभ्यास को ।

वह संयमी धारण करे रे नित्य प्रत्याख्यान को ॥१०६॥

इसप्रकार जो सदा जीव और कर्म के भेद का अभ्यास करता है, वह संयमी नियम से प्रत्याख्यान धारण करने में समर्थ है।

इस गाथा के भाव को टीकाकार मुनिराज इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“यह निश्चयप्रत्याख्यान अधिकार के उपसंहार का कथन है।

श्रीमद् अरहंत भगवान के मुखारविन्द से निकले हुए परमागम के अर्थ का विचार करने में समर्थ जो परमसंयमी; अनादि बन्धनरूप अशुद्ध अन्तःतत्त्व और कर्म पुद्गल का भेद, भेदाभ्यास के बल से करता है; वह परमसंयमी निश्चयप्रत्याख्यान और व्यवहारप्रत्याख्यान को स्वीकार करता है।”

उक्त गाथा और टीका में निश्चयप्रत्याख्यानाधिकार का उपसंहार करते हुए मात्र इतना ही कहा गया है कि जिनेन्द्रकथित आगम के मर्मी मुनिराज तो भगवान आत्मा और पौद्गलिक कर्म के बीच जो भेद हैं, उसे भलीभाँति जानकर निरन्तर उसी के अभ्यास में रहते हैं; क्योंकि वे निश्चय और व्यवहारप्रत्याख्यान को स्वीकार करनेवाले संत हैं ॥१०६॥

इसके बाद टीकाकार मुनिराज पूरे अधिकार के उपसंहार में नौ छन्द लिखते हैं; जिनमें पहला छन्द इसप्रकार है -

(रथोद्धता)

भाविकालभवभावनिवृत्तः

सोहमित्यनुदिनं मुनिनाथः ।

भावयेदखिलसौख्यनिधानं

स्वस्वरूपममलं मलमुक्त्यै ॥१४३॥

(रोला)

भाविकाल के भावों से तो मैं निवृत्त हूँ।

इसप्रकार के भावों को तुम नित प्रति भावो ॥

निज स्वरूप जो सुख निधान उसको हे भाई!

यदि छूटना कर्मफलों से प्रतिदिन भावो ॥१४३॥

‘जो भविष्यकाल के सांसारिक भावों से निवृत्त है, वह मैं हूँ।’ इसप्रकार के भावों को, कर्मफल से मुक्त होने के लिए, पूर्ण सुख के निधान निर्मल निजस्वरूप को सभी मुनिराजों को नित्य भाना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजी स्वामी इस छन्द के भाव को इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“भावलिङ्गी वीतरागी मुनिराज कहते हैं कि मैं तो भव के भाव से रहित हूँ और भविष्य में भी मुझे भव का भाव नहीं होगा। पुण्य-पाप इत्यादि सभी विभाव भाव मलिन हैं; इनसे मुक्त होने के लिए परिपूर्ण आनन्द के निधान निजस्वरूप भगवान आत्मा की प्रतिदिन भावना भाना चाहिए। मैं तो चैतन्य ज्ञायक हूँ - ऐसा निर्णय करके उसमें जितनी एकाग्रता होगी, उतना प्रत्याख्यान है।

भूतकाल के दोषों का प्रतिक्रमण होता है। वर्तमानकाल की आलोचना और भविष्यकाल का प्रत्याख्यान होता है; परन्तु चिदानन्द स्वरूप निजात्मा त्रिकाल दोषरहित शुद्ध है, उसकी दृष्टि करके उसमें एकाग्र होने से त्रिकाल के दोषों का प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और आलोचना हो जाती है - इसलिए कहा है कि निज परमात्मतत्त्व की प्रतिदिन भावना भाना - यही मुक्ति का कारण है।”

इस छन्द में मात्र इतना ही कहा गया है कि प्रत्येक मुनिराज को कर्ममल से मुक्त होने के लिए ज्ञानानन्दस्वभावी निज भगवान आत्मा की भावना भानी चाहिए तथा इसप्रकार सोचना चाहिए कि मैं तो वह हूँ, जो भविष्यकाल के सांसारिक भावों से निवृत्त है।

चूँकि यहाँ प्रत्याख्यान की चर्चा चल रही है; इसलिए यहाँ भविष्य काल के सांसारिक भावों से निवृत्त होने की बात कही है ॥१४३॥

दूसरा छन्द इसप्रकार है -

(स्वागता)

घोरसंसृतिमहार्णवभास्वद्यानपात्रमिदमाह जिनेन्द्रः ।

तत्त्वतः परमतत्त्वमजस्रं भावयाम्यहमतो जितमोहः ॥१४४॥

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ ८६६-८६७

(रोला)

परमतत्त्व तो अरे भयंकर भव सागर की।

नौका है - यह बात कही है परमेश्वर ने ॥

इसीलिए तो मैं भाता हूँ परमतत्त्व को।

अरे निरन्तर अन्तरतम से भक्तिभाव से ॥१४४॥

‘यह परमतत्त्व भगवान आत्मा भयंकर संसार सागर की दैदीप्यमान नाव है’ - ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं। इसलिए मैं मोह को जीतकर निरन्तर परमतत्त्व को तत्त्वतः भाता हूँ।

इस छन्द के भाव को पूज्य गुरुदेवश्री कानजी स्वामी इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“यह परमचैतन्य तत्त्व संसार समुद्र से पार होने के लिए सुन्दर नौका के समान है। इस चैतन्य नौका का आश्रय लेने से आत्मा घोर संसार समुद्र से पार हो सकता है। चिदानन्द आत्मतत्त्व को जाने बिना पुण्य-पाप में उलझ जावे तो संसार से नहीं तिर सकता; परन्तु यहाँ परम चैतन्यतत्त्व तो ऐसी नाव है कि उसकी श्रद्धा-ज्ञान और उसमें एकाग्रता करने से घोर संसार समुद्र का किनारा आ जाता है। एकमात्र निज परमात्मतत्त्व; अपने को संसार से तारने के लिए नौका समान है - ऐसा जिनेन्द्र भगवान ने कहा है। इसलिए मैं मोह को जीतकर निरन्तर उस परमात्मतत्त्व की भावना भाता हूँ - ऐसी भावना, वह प्रत्याख्यान है।”

इस कलश में परमतत्त्व की भावना भाने की प्रेरणा दी है; क्योंकि यह परमतत्त्व संसारसागर से पार उतारने के लिए नौका के समान है।

जिसप्रकार नाव के सहारे से विशाल समुद्र से भी पार पा सकते हैं; उसीप्रकार परमतत्त्व की भावना से भी संसारसमुद्र का किनारा पाया जा सकता है ॥१४४॥

तीसरा छन्द इसप्रकार है -

(मंदाक्रांता)

प्रत्याख्यानं भवति सततं शुद्धचारित्रमूर्तेः

भ्रान्तिध्वंसात्सहजपरमानंदचिन्निष्ठबुद्धेः ।

नास्त्यन्येषामपरसमये योगिनामास्पदानां

भूयो भूयो भवति भविनां संसृतिर्घोररूपा ॥१४५॥

(रोला)

भ्रान्ति नाश से जिनकी मति चैतन्यतत्त्व में।

निष्ठित है वे संत निरन्तर प्रत्याख्यान में ॥

अन्य मतों में जिनकी निष्ठा वे योगीजन।

भ्रमे घोर संसार नहीं वे प्रत्याख्यान में ॥१४५॥

भ्रान्ति के नाश से जिसकी बुद्धि सहज परमानन्दमयी चेतनतत्त्व में निष्ठित है; ऐसे शुद्धचारित्रमूर्ति को निरन्तर प्रत्याख्यान है। परसमय में अर्थात् अन्य दर्शन में जिनकी निष्ठा है; उन योगियों को प्रत्याख्यान नहीं होता है; क्योंकि उन्हें तो बारंबार घोर संसार में परिभ्रमण करना है।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजी स्वामी इस छन्द के भाव को इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -
“शुद्ध चैतन्यतत्त्व का भान करके जिसने भ्रान्ति का नाश किया है, और जिसकी बुद्धि त्रिकाल सहज परमानन्दयुक्त चैतन्य में एकाग्र है - इसप्रकार के शुद्ध चारित्रमूर्ति मुनियों को सतत् प्रत्याख्यान होता है।^१”

जो शुद्धात्मस्वरूप चैतन्य में लीन हुए, उन्हें तो शुद्ध चारित्रमूर्ति कहा; और जिन्हें आत्मभान नहीं है, उन्हें परसमय मिथ्यादृष्टि कहा। उनका पुनः पुनः घोर संसार में भ्रमण होता है और ध्रुव चैतन्य की भावना से संसार भ्रमण मिटता है।^२”

इस छन्द में भी यही कहा गया है कि जिनकी बुद्धि अपने भगवान आत्मा में निष्ठित है; वे तो निरन्तर प्रत्याख्यान में ही हैं; किन्तु जिनकी बुद्धि अन्य मिथ्यामान्यताओं में निष्ठित है; वे अनन्तकाल तक संसार-सागर में ही गोते लगाते रहेंगे; क्योंकि उनके प्रत्याख्यान नहीं है ॥१४५॥

चौथा छन्द इसप्रकार है -

(शिखरिणी)

महानंदानंदो जगति विदितः शाश्वतमयः

स सिद्धात्मन्युच्चैर्नियतवसतिर्निर्मलगुणे ।

अमी विद्वान्सोपि स्मरनिशितशस्त्रैरभिहताः

कथं कांक्षन्त्येनं बत कलिहतास्ते जडधियः ॥१४६॥

(रोला)

जो शाश्वत आनन्द जगतजन में प्रसिद्ध है।

वह रहता है सदा अनूपम सिद्ध पुरुष में ॥

ऐसी थिति में जड़बुद्धि बुधजन क्यों रे रे।

कामबाण से घायल हो उसको क्यों चाहे ? ॥१४६॥

जो जगत प्रसिद्ध शाश्वत महानन्द है; वह निर्मल गुणवाले सिद्धात्मा में अतिशयरूप से रहता है। ऐसी स्थिति होने पर भी अरे रे ! विद्वान लोग भी काम के तीक्ष्ण बाणों से घायल होते हुए भी उसी की इच्छा क्यों करते हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री कानजी स्वामी इस छन्द के भाव को इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ ८६८

२. वही, पृष्ठ ८६८

“अहो! आनन्दमूर्ति सुख का निधान तो आत्मा है और वही सुख सिद्धभगवन्तो की पर्याय में प्रगट हुआ है - इस बात की जिसे खबर नहीं है, वह तो विषयों की इच्छा से दुःखी होकर भी विषयों को चाहता ही है; परन्तु जिन विद्वानों ने इस बात को जाना है, वे भी इस चैतन्य की भावना क्यों नहीं भाते और भोगों की ही भावना क्यों भाते हैं ?”

इस छन्द में यह कहा गया है कि जो जगत में प्रसिद्ध अतीन्द्रिय आनन्द है, वह तो निर्मल गुणवाले सिद्धपुरुषों में ही पाया जाता है। ऐसी स्थिति होने पर भी विद्वज्जन न मालूम क्यों कामबाण से घायल होकर भी, उसी की वांछा करते हैं? यह बड़े आश्चर्य की बात है ॥१४६॥

पाँचवाँ छन्द इसप्रकार है -

(मंदाक्रांता)

प्रत्याख्यानाद्भवति यमिषु प्रस्फुटं शुद्धशुद्धं
सच्चारित्रं दुरघतरुसांद्राटवीवह्निरूपम् ।
तत्त्वं शीघ्रं कुरु तव मतौ भव्यशार्दूल नित्यं
यत्किंभूतं सहजसुखदं शीलमूलं मुनीनाम् ॥१४७॥

(रोला)

अघ वृक्षों की अटवी को वह्नि समान है।

ऐसा सत् चारित्र सदा है प्रत्यख्यान में॥

इसीलिए हे भव्य स्वयं की बुद्धि को तू।

आत्मतत्त्व में लगा सहज सुख देने वाले ॥१४७॥

जो दुष्ट पापरूपी वृक्षों की घनी अटवी को जलाने के लिए अग्निरूप हैं - ऐसा प्रगट शुद्ध-बुद्ध सत्चारित्र संयमियों को प्रत्याख्यान से होता है; इसलिए हे भव्यशार्दूल तू शीघ्र अपनी बुद्धि में आत्मतत्त्व को धारण कर; क्योंकि वह तत्त्व सहजसुख को देनेवाला और मुनिवरो के चारित्र का मूल है।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजी स्वामी इस छन्द के भाव को इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“मुनिराज को शुद्ध चारित्रस्वरूप अग्नि प्रगट हुई, वह पापरूपी जंगल को भस्म कर देगी। संयमियों को प्रत्याख्यान से अर्थात् स्वरूप में रागरहित एकाग्रता से शुद्ध चारित्र प्रगट होता है, इसलिए आचार्यदेव कहते हैं कि हे भव्यशार्दूल! तू अपने हृदय में जल्दी ही सहजतत्त्व को धारण कर, यह तत्त्व सहजसुख को देनेवाला है और मुनिराज को चारित्र का मूल है - ऐसे तत्त्व में एकाग्र होने से प्रत्याख्यान अर्थात् चारित्र होता है।”

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ ८७०

२. वही, पृष्ठ ८७०-८७१

इस छन्द में कहा गया है कि पापरूपी वृक्षों के घने जंगल को जलाने के लिए जो अग्नि के समान है; ऐसा शुद्ध-बुद्ध चारित्र संयमीजनों को प्रत्याख्यान से होता है। इसलिए हे भव्यजीवो ! तुम शीघ्र ही अपनी बुद्धि को आत्मतत्त्व में लगाओ; क्योंकि वह आत्मतत्त्व सहजसुख देनेवाला है और मुनिजनों के चारित्र का मूल है ॥१४७॥
छठवाँ छन्द इसप्रकार है -

(मालिनी)

जयति सहजतत्त्वं तत्त्वनिष्णातबुद्धेः
हृदयसरसिजाताभ्यन्तरे संस्थितं यत् ।
तदपि सहजतेजः प्रास्तमोहान्धकारं
स्वरसविसरभास्वद्वोधविस्फूर्तिमात्रम् ॥१४८॥

(रोला)

जो सुस्थित है धीमानों के हृदय कमल में।
अर जिसने मोहान्धकार का नाश किया है ॥
सहजतत्त्व निज के प्रकाश से ज्योतित होकर।

अरे प्रकाशन मात्र और जयवंत सदा है ॥१४८॥

तत्त्व में निष्णात बुद्धिवाले जीवों के हृदयकमलरूप अभ्यन्तर में जो सहज आत्मतत्त्व स्थित है; वह सहज आत्मतत्त्व जयवंत है। उस सहज तेज ने मोहान्धकार का नाश किया है और वह सहजतेज निज रस के विस्तार से प्रकाशित ज्ञान के प्रकाशन मात्र है।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजी स्वामी इस छन्द के भाव को इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“चैतन्यशक्ति की प्रतीति करके उसकी भावना में एकाग्र हो तो, मोह का नाश होकर परमात्मदशा प्रगट होती है। सहजतत्त्व त्रिकाल निजरस के फैलाव से प्रकाशित होता हुआ ज्ञान का प्रकाशन मात्र करता है। यह सब त्रिकालीतत्त्व की महिमा है। उसकी महिमा पूर्वक उसमें एकाग्र होने से पर्याय में सहज ज्ञानानन्ददशा प्रगट होती है। जो तत्त्व में निष्णात है, उसे ही यह परमात्मतत्त्व प्रतीति में आता है और पश्चात् उसमें लीन होने से चारित्र होता है।”

इसप्रकार हम देखते हैं कि इस छन्द में त्रिकाली ध्रुव निज भगवान आत्मा को सहजतत्त्व से अभिहित किया है और उस त्रिकाली ध्रुव आत्मरूप सहजतत्त्व के गीत गाये हैं। कहा है कि उस सहजतेज ने मोहान्धकार का नाश कर दिया है, वह सहजतत्त्व ज्ञान के प्रकाशन के अतिरिक्त कुछ नहीं है और वह सदा जयवंत वर्तता है।

तात्पर्य यह है कि उसका सर्वथा लोप कभी नहीं होता ॥१४८॥

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ ८७१-८७२

सातवाँ छन्द इसप्रकार है -

(पृथ्वी)

अखंडितमनारतं सकलदोषदूरं परं
भवांबुनिधिमग्नजीवततियानपात्रोपमम् ।
अथ प्रबलदुर्गवर्गदववह्निकीलालकं
नमामि सततं पुनः सहजमेव तत्त्वं मुदा ॥१४९॥

(रोला)

सकल दोष से दूर अखण्डित शाश्वत है जो ।
भवसागर में डूबों को नौका समान है ॥
संकटरूपी दावानल को जल समान जो ।
भक्तिभाव से नमस्कार उस सहजतत्त्व को ॥१४९॥

जो सहजतत्त्व अखण्डित है, शाश्वत है, सभी दोषों से दूर है, उत्कृष्ट है, भवसागर में डूबे हुए जीवों को नाव के समान है तथा प्रबल संकटों के समूह्रूपी दावानल को बुझाने के लिए जल समान है; उस सहजतत्त्व को मैं प्रमोद भाव से नमस्कार करता हूँ ।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजी स्वामी इस छन्द के भाव को इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“वह सहजतत्त्व भवसागर में डूबते जीवों के लिए तैरती हुई नौका के समान है और संकटों के समूह्रूपी दावानल को शान्त करने के लिए जलसमान है । उस सहजतत्त्व की तरफ ढलते ही संसार का दावानल शान्त हो जाता है - ऐसे उस सहजतत्त्व को मैं प्रमोद पूर्वक सतत् नमस्कार करता हूँ ।

देखो ! ऐसे सहजतत्त्व के बहुमान बिना वास्तविक चारित्र अथवा प्रत्याख्यान नहीं होता है; इसलिए इस सहजतत्त्व की महिमा बताई है ।”

जिस सहजतत्त्व के गीत विगत छन्द में गाये गये हैं; उसी की महिमा इस छन्द में भी बता रहे हैं । कहा जा रहा है कि वह सहजतत्त्वरूप भगवान् आत्मा अखण्डित है, शाश्वत है, निर्दोष है, उत्कृष्ट है, संसारसमुद्र में डूबते लोगों को बचाने के लिए नाव के समान है और संकटरूपी दावानल को शान्त करने के लिए जल समान है; इसलिए मैं उस सहजतत्त्व को प्रमोदभाव से नमस्कार करता हूँ ॥१४९॥

आठवाँ छन्द इसप्रकार है -

(पृथ्वी)

जिनप्रभुमुखारविन्दविदितं स्वरूपस्थितं
मुनीश्वरमनोगृहान्तरसुरत्नदीपप्रभम् ।
नमस्यमिह योगिभिर्विजितदृष्टिमोहादिभिः
नमामि सुखमंदिरं सहजतत्त्वमुच्चैरदः ॥१५०॥

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ ८७२-८७३

(रोला)

जिनमुख से है विदित और थित है स्वरूप में ।

रत्नदीप सा जगमगात है मुनिमन घट में ॥

मोहकर्म विजयी मुनिवर से नमन योग्य है ।

उस सुखमंदिर सहजतत्त्व को मेरा वंदन ॥१५०॥

जो सहजतत्त्व जिनेन्द्र भगवान के मुखकमल से प्रसिद्ध हुआ है, जो अपने स्वरूप में स्थित है, जो मुनिराजों के मनरूपी घट में सुन्दर रत्नदीपक के समान प्रकाशित हो रहा है, जो इस लोक में दर्शनमोह आदि कर्मों पर विजय प्राप्त किये हुए योगियों के द्वारा नमस्कार करने योग्य है तथा जो सुख का मंदिर है; उस सहजतत्त्व को मैं सदा अत्यन्त भक्तिभाव से नमस्कार करता हूँ।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजी स्वामी इस छन्द के भाव को इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“यहाँ सहजतत्त्व को नमस्कार किया गया है। सहजतत्त्व अर्थात् अपना शाश्वत् शुद्धस्वरूप, वही आदरणीय है। वह सहजतत्त्व श्री जिनेन्द्रभगवान के मुखारविन्द से प्रसिद्ध हुआ है। भगवान की वाणी में पुण्य-पापरूप विभावों से पार और शरीरादि से भिन्न स्वाभाविक सहज आत्मतत्त्व ही उपादेय बताया गया है। इसका निर्णय किए बिना सच्चा त्याग और चारित्र नहीं होता।”

इस छन्द में भी उसी सहजतत्त्व की विशेषतायें बताते हुए वंदन किया गया है। अपने स्वरूप में स्थित और जिनेन्द्रभगवान की वाणी में समागत वह सहजतत्त्व मुनियों के मनरूपी घट में रत्नदीपक के समान जगमगा रहा है। जो अतीन्द्रिय सुख का मंदिर है; उस सहजतत्त्व को नमस्कार हो - ऐसा कहा गया है ॥१५०॥ (क्रमशः)

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ ८७३-८७४

निमित्तों को दोष देना ठीक नहीं

समय से पहले और भाग्य से अधिक कभी किसी को कुछ नहीं मिलता। जब ऋषभदेव को आहार प्राप्ति की उपादानगत योग्यता पक गई तो आहार देनेवालों को भी जातिस्मरण हो गया। इससे तो यही सिद्ध होता है कि जब अपनी अन्तर से तैयारी हो तो निमित्त तो हाजिर ही रहता है। पर जब हमारी पात्रता ही न पके तो निमित्त भी नहीं मिलते उपादानगत योग्यता और निमित्तों का सहज ऐसा ही संयोग है। अतः निमित्तों को दोष देना ठीक नहीं है; परन्तु अपनी पात्रता का विचार करना ही कल्याणकारी है।

- पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव, पृष्ठ 58

